ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 295-297

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

भारत में 1958 से 1968 के मध्य स्टर्लिंग तथा डॉलर क्षेत्र

डॉ0 सतीश कुमार शिवहरे
असि० प्रोफेसर– अर्थशास्त्र विभाग, पंडित जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय, बांदा (उ0प्र0) भारत

Received-21.06.2022, Revised-25.06.2022, Accepted-29.06.2022 E-mail: dr.satishkumarshivhare@gmail.com

सारांशः – ***ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्वर्णमान त्यागने के पश्चात् एक प्रकार का आर्थिक विप्लव उत्पन्न हो गया था। ब्रिटेन से व्यापारिक सम्पर्क रखने वाले देशों ने सामान्य हित से प्रेरित होकर अपनी मुद्रा का सम्बन्ध स्टर्लिंग से करना चाहा, जिससे मुद्रा का एक पृथक् क्षेत्र बन गया। इस विचारधारा को रखकर अनेक देश एक दूसरे के समीप आये जिसके परिणामस्वरूप, एक ऐसे क्षेत्र का निर्माण हुआ जहाँ विनियम स्थायित्व प्राप्त हो सकता था। इस क्षेत्र की कोई औपचारिक सीमा निर्धारित नहीं की गई स्टार्लिंग क्षेत्र का निर्माण 1931 में हुआ। इसमें कनाड़ा को छोड़कर सभी साम्राज्य देश एवं कुछ गैर ब्रिटिश देश जैसे पुर्तगाल और ईराक भी सम्मिलित हुए इसके पश्चात् स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, फिनलैंड, लटाविया, आईसलैंड और लीबिया आदि देश भी सम्मिलित हुए। परन्तु 1939 में अनेक गैर–साम्राज्य देशों ने इस क्षेत्र से अपना सम्पर्क तोड़ लिया, परन्तु कनाड़ा को छोड़कर सभी साम्राज्य देश इसके सदस्य बने रहे।***

कुंजीभूत शब्द– स्वर्णमान, विप्लव, व्यापारिक सम्पर्क, स्टर्लिंग, विचारधारा, परिणामस्वरूप, स्थायित्व, औपचारिक सीमा।

स्टर्लिंग क्षेत्र के बनने के कारण– अनेक देश अपनी मुद्रा का सम्बन्ध स्टर्लिंग से करना चाहते थे, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी, यदि यह मनोवैज्ञानिक कारण न होता तो ये देश स्टर्लिंग क्षेत्र में सम्मिलित न होते। जहाँ तक साम्राज्यीय देशों का प्रश्न है उनका इंग्लैंड से राजैनतिक गठबन्धन एक महत्वपूर्ण कारण था जिसने उन्हें इस क्षेत्र में सम्मिलित होने के लिए आकर्षित किया। इसके अतिरिक्त इन देशों के इंग्लैंड से घनिष्ठ वित्तीय एवं व्यापारिक सम्बन्ध थे जिनके कारण यह स्टर्लिंग क्षेत्र से पृथक् नहीं रह सकते थे। बहुत से देश ऋणी थे जिनको भुगतान स्टर्लिंग क्षेत्र में आना पड़ा। 1932 में ओटावा में हुए साम्राज्यीय अधिमान (Imperial Preference) समझौते के द्वारा इन देशों के इंग्लैंड से व्यापारिक सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गए थे। इसकों बनाये रखने के लिए इन्होंने स्टर्लिंग क्षेत्र में आना स्वीकार किया। इन देशों का निर्यात व्यापार अधिकांश इंग्लैंड से होता था, इसलिए ये देश यह चाहते थे कि निर्यात वस्तुओं के मूल्य स्टर्लिंग में स्थिर बने रहें। इनके निर्यात इंग्लैंड के बाजार पर निर्भर करते थे। इस स्थिति को सुरक्षित बनाए रखने के लिए वे चाहते थे कि यदि कभी पौंड का अवमूल्यन हो तो उनकी मुद्रा की भी उसी के साथ अवमूल्यन हो जाय। 1949 में जब स्टर्लिंग का अवमूल्यन हुआ तो केवल पाकिस्तान को छोड़कर इन सभी देशों ने अपनी–अपनी मुद्रा का अवमूल्यन
कर दिया। एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि स्टर्लिंग क्षेत्र में महामन्दी (Great Depression) का कुप्रभाव हल्का देखा गया। जब यह मन्दी अपनी चरम सीमा पर थी उस समय ब्रिटेन की औद्योगिक गतिविधियों में केवल 17 प्रतिशत से की आयी। इस प्रकार ब्रिटेन ने इन देशों को स्थाई बाजार का आकर्षण दिया। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के आयात अधिकांश खाद्यान्न सामग्री के होते थे जिनकी मांग बेलोच होती थी। इसलिए ये देश स्टर्लिंग क्षेत्र का सदस्य बनकर अपनी मुद्रा स्टर्लिंग से अधिक स्थाई रख सकते थे।

स्टर्लिंग क्षेत्र की विशेषतायें–

1. स्टर्लिंग क्षेत्र से सभी सम्बन्धी राष्ट्र अपना अर्जित किया हुआ व्यक्तिगत स्वर्ण तथा डॉलर मुद्रायें बैंक ऑफ इंग्लैंड को समर्पित कर देंगे जिनके प्रयोग पर इस बैंक का नियन्त्रण रहेगा।
2. सभी सदस्य राष्ट्र अपनी विदेशी मुद्रा सम्बन्धी क्रियाओं को प्रायः ब्रिटिश विनियम नियन्त्रण की रूपरेखा के अनुसार ही संचालित करेंगे।
3. केवल स्टर्लिंग क्षेत्र के अन्दर ही भुगतान स्वतन्त्रतापूर्वक किये जा सकते थे। सदस्य देश लन्दन में स्थित अपने स्टर्लिंग कोष का प्रयाग क्षेत्र के किसी भाग के लिए कर सकता था, परन्तु स्टर्लिंग क्षेत्र से बाहर वाले देशों के भुगतान पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रतिबन्ध का यह उद्देश्य था कि सीमित डॉलर कोष पर अधिक भार न पड़े।
4. डॉलर वाले देशों से होने वाले आयातों पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए यदि फिर भी डॉलर मुद्रा का अभाव अनुभव किया गया तो सब ही सम्बन्धी राष्ट्र 25 प्रतिशत तक डॉलर वाले आयात कम कर देंगे।

सदस्यता से लाभ– स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्य बनने से इन राष्ट्रों का उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यपरायणता अवश्य बढ़ी परन्तु साथ ही साथ इनको कुछ विशेष अधिकार भी मिले जिनसे वे लाभान्वित हुए। इन लाभों की विवेचना नीचे की गई है–
1. स्टर्लिंग क्षेत्र एक बड़ा क्षेत्र था जहाँ भुगतान बहुमुखी (Multilateral) हो सकते थे। एक सदस्य देश क्षेत्र के किसी भी देश

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

को कोई भी समान सरतला से बेच सकता था।

2. सम्बन्धी देश स्टर्लिंग क्षेत्र में केवल सामान ही स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं बेच सकते थे, परन्तु वे क्षेत्र के किसी भी देश में पूँजी का स्थानान्तरण भी स्वतंत्रता पूर्वक कर सकते थे।

3. सदस्य देश को यह अधिकार भी प्राप्त था कि वह स्टर्लिंग कोष (Sterling Pool) का प्रयोग कर सके यद्यपि उस कोष में उसका कोई अनुदान नहीं। इस दृष्टि से स्टर्लिंग क्षेत्र एक संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के समान था।

4. युद्धकाल में ग्रेट ब्रिटेन ने फौज की सहायतार्थ जो सामग्री खरीदी थी उसका भुगतान तुरन्त न करके स्थगित कर दिया। ऋणदाता देशों के खातों में यह राशि जमा कर दी गई जो पौण्ड–पावनाओं के नाम से पुकारी जाती है परन्तु स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्य राष्ट्रों ने ही इन पौण्ड–पावनों के भुगतान की सुविधायें उत्पन्न कीं।

5. कोष के जुटाने से किसी विशेष सदस्य को कभी लाभ होता था और दूसरे की हानि, यह इस बात पर निर्भर करता था कि डॉलर के घाटे को दूर करने के लिये वित्तीय सहायता का प्रबन्ध करता है या डॉलर अतिरेक को कोष में पहुंचाता है।

इस संदर्भ में एक लेखक ने कहा है– "अधिकांश देशों के लिए यह जूता पारी–पारी से कभी एक पैर और कभी दूसरे पैर में रहा है। जूते का उपलब्ध होना, नंगे पैर चलने से अच्छा है।"

6. स्टर्लिंग क्षेत्र के सदस्य बनने से इन देशों में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध, निर्यातों के अवसर, पूंजी और विनियोग की सुविधायें और पारस्परिक सरकारी सहायता की प्राप्ति के अवसर बढ़ गये।

स्टर्लिंग क्षेत्र की समस्यायें– विविध प्रकार के देशों के स्टर्लिंग क्षेत्र में सम्मिलित होने से इसके प्रशासन में अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो गई। कुछ सदस्य देश आर्थिक दृष्टि से विकसित थे। इनके हितों में असमानता उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इस आधार पर जो कठिनाइयॉ उत्पन्न हुई वे निम्न है–

1. दुर्लभ मुद्रा का वितरण इन देशों की परिस्थितियों के अनुकूल न हो सका। दुर्लभ मुद्रा अधिक अर्जन करने वाले देशों को यह शिकायत रही कि उनको उनकी अवश्यकताओं के अनुसार इस मुद्रा का हिस्सा नहीं मिला।

2. डॉलर–भुगतान की कठिनाइयॉ सदैव उत्पन्न होती रही, कभी इंग्लैंड के कारण तो कभी अन्य देशों के कारण, जिससे परेशान होकर डॉलर आयातों पर भेदात्मक प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

3. प्रत्येक देश का केन्द्रीय बैंक अपनी राष्ट्रीय नीति के अनुसार कार्य करना चाहता था जो समन्वित नीति से मेल नहीं खाती थी। उसका परिणाम यह होता है कि मौद्रिक साम्य बनाये रखना कठिन हो गया है।

4. पर्याप्त सूचना के अभाव के कारण प्रत्येक देश को डॉलर सम्बन्धी आवश्यकताओं का ठीक–ठीक अनुमान नहीं लगपाता इसलिए; दुर्लभ मुद्रा का प्रबन्ध उनकी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं हो पाता।

5. लन्दन में जो नीति–विषयक निर्णय लिये जाते हैं उससे सभी सदस्य देश सन्तुष्ट नहीं है।

भारत को लाभ– भारत को भी स्टर्लिंग क्षेत्र की सदस्यता ग्रहण करने से कुछ लाभ हुये हैं। भारत को अपने आर्थिक विकास हेतु अन्य देशों से पूँजी का आयात सुलभ हो गया।

भारत क्षेत्र से सम्बन्धित देशों से स्वतंत्रतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी कर सकता था जब इस उत्पन्न होने वाली भुगतान का उत्तरदायित्व बैंक ऑफ इंग्लैंड पर ही रहा हो। भारत को पौण्ड पावनाओं का भुगतान भी सुलभ हो गया क्योंकि भारत को इस क्षेत्र से आयात करने के अतिरिक्त यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वह इन पावनाओं का प्रयोग अन्य सम्बन्धित देशों से सामान के आयात करने में कर सकता था। यह अवश्य है कि भारत को उतना लाभ प्राप्त नहीं हुआ जितनी उसकी डॉलर आय थी। भारत का डॉलर क्षेत्र से बहुत अच्छा व्यापार था और उसने पर्याप्त डॉलर–आय क्षेत्र के कोष में जमा भी की थी।

डॉलर क्षेत्र– डॉलर क्षेत्र को दुर्लभ मुद्रा क्षेत्र (Hard Currency Area) भी कहा जाता है। डॉलर क्षेत्र में निम्न देश सम्मिलित हैं–

(i) U. S. A. तथा ऐसे राज्य जो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के आधिपत्य में हैं, (ii) Canada, (iii) vesfjdk [kkrk ns"k (American Account Countries)- Philippines, Bilivia, Columbia, Costa Rica, Cuba, the Dominican Republic Edudor, Guatomala, Haiti, Honduras, Mexico, Nicaragua, Panama, Salvador, Venezuela vkSj Liberia.

दूसरे महायुद्ध काल से डॉलर की लोकप्रियता में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। स्वर्ण की अनुपस्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक जगत में डॉलर ही विनियम का एकमात्र माध्यम रह गया। इस मुद्रा में संसार को प्रत्येक राष्ट्र भुगतान स्वीकार करने को तैयार रहता है। डॉलर की निरन्तर मांग के बढ़ने के कारण ही यह मुद्रा दुर्लभ हो गई है। डॉलर की दुर्लभता विश्व में उसकी मांग के बढ़ने के कारण हुई। ये कारण निम्न हैं–

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

1– शक्तिशाली अमेरिकी अर्थ–व्यवस्था– पिछले 30 वर्षो में अमेरिकी अर्थ–व्यवस्था शक्तिशाली एवं स्वस्थ रही हैं, यद्यपि बीच–बीच में मन्दी के हिलोरे अवश्य आये परन्तु उनको निष्क्रिय कर दिया गया। अमेरिका अर्थ–व्यवस्था में स्थिरता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि अन्य देशों की तुलना में अमेरिकी मुद्रा का मूल्य कम गिरा है। सन् 1958 से 1968 के मध्य अमेरिकी डॉलर में वार्षिक ह्रास 1.9 प्रतिशत रहा, जबकि कनाडा और जर्मनी में 2.2, ब्रिटेन में 2.9, नैदरलेंड्स में 3.2, फ्रांस में 2.8, जापान में 4.6 तथा भारत में 5.9 प्रतिशत रहा। डॉलर के मूल्य में स्थायित्व बने रहने के कारण डॉलर का महत्व मौद्रिक जगत में पहले जैसा ही बना हुआ है।

2– अन्य देशों में व्यय का बढ़ता हुआ भार– विश्व के अनेक देशों में व्यय का भार अधिक बढ़ा है। विकासशील देशों में योजनाओं पर अधिक व्यय किये जाने के कारण मुद्रा–स्फीति ने भयंकर रूप धारण किया है। इन देशों के मुद्रा मूल्य में बहुत अधिक गिरावट आई। अमेरिका में भी व्यय के भार बढ़े परन्तु वहॉ के अर्थतन्त्र उसको सहन कर गये जब कि अन्य देशों में व्यय के भार को सहन की शक्ति नहीं थी। उन देशों को जो बढ़ते हुए व्यय के भार को सहन न कर सके, अपने कोषनिधि ा में ऐसी मुद्रा का सहारा लेना पड़ा जिसका मूल्य तुलनात्मक दृष्टि से अधिक स्थायित्व रहा हो। डॉलर ही एक ऐसी मुद्रा थी।

3– उत्पादन क्षमता में वृद्धि– दूसरे महायुद्ध का अमेरिकी अर्थ–व्यवस्था पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। अमेरिका अपनी प्राविधिक तथा वैज्ञानिक उन्नति से उत्पादन क्षमता बढ़ाने में समर्थ हुआ। उसने विदेशी बाजारों पर अधिकार करके स्वर्णकोषों की वृद्धि में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। विदेशी व्यापार के विकास के कारण ही डॉलर की प्रतिष्ठा मौद्रिक जगत में अधिक बढ़ गई।

4– ऋण प्रदान करने में समर्थ– अमेरिका ने मार्शल योजना के अन्तर्गत फ्रांस, जर्मनी तथा ब्रिटेन को बड़ी मात्रा में ऋण देकर उनके पुनर्निर्माण में सहायता की है। वह विकासशील देशों को अब भी बड़ी मात्रा में ऋण की सुविधायें प्रदान कर रहा है। यह ही नहीं वह इन देशों को समान तथा तकनीकी ज्ञान भी ऋण पर दे रहा है जिससे डॉलर की शक्ति को बल मिला है।

5– पूँजी विनियोग– ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त अमेरिका ने कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी और जापान जैसे विकसित देशों में बड़ी मात्रा में अपनी पूँजी विनियोजित कर रखी है। भारत, पाकिस्तान, लंका, ईरान और टर्की में भी अमेरिकी पूँजी का विनियोग कोई कम नहीं है। ऐसी वित्तीय सहायता से डॉलर की प्रभुता में आशातीत वृद्धि हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, डॉ0 हरिश्चन्द्रः मौद्रिक अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा–3.
2. शर्मा, डॉ0 के0एस0ः डॉ0 वी0डी0 नागर, सुरेश चन्द्र शर्मा, मौद्रिक अर्थशास्त्र, गोयल पब्लिशिंग हाउस, सुभाष बाजार, मेरठ–2.
3. भटनागर, कालिका प्रसादः आर्थिक एवं विचारों का इतिहास, किशोर पब्लिशिंग हाउस, परेड रोड़, कानपुर–1.
4. शर्मा, प्रो0 रमेश चन्दः आर्थिक विचारों का इतिहास, राजीव प्रकाशन मेरठ।
5. Knut wicksell: Interest and Prices (London), 1936.
6. Robins Sydney: The securities Market (1966), The free praise, New York.
7. Roland, Rovinson I. : Money and capital market (1964) Mc /grow Hill book company, New York..
8. G.K. Kulkarni: Deficit Financing and Economic Development.
9. Pr. B.K. R.V. Rao: Indian Economic Review Feb. 1953
10. John Williamson: Liquidity and Multiple key currency proposal, the American Economic Review, June, 1963.

*****